रिश्ते

तुमने कितनी जल्दी
इस अनाम एहसास को
नाम दे दिया
रिश्ते में बाँध दिया

सिर्फ इतना कहा था
तुम मेरे दिल के करीब हो
दिल के निकट
क्या सिर्फ रिश्ते होते हैं ?
एहसास और वे जज्बात
जो अँकुरित हुए ही थे

जिन्हें पलना था
बढ़ना था
पल्लवित और
परिमार्जित होना था
परवान चढ़ना था
अपने शैशवकाल में ही
रिश्तों की सूली पर टँग गए

भावनाएँ
संवेग
खुले रहकर भी
मर्यादित रह सकते हैं
फिर बँधना-बाँधना क्यों ?
शायद तुमने
सामाजिक जरूरत समझी होगी

मैं ऐसा समाज निर्मित करूँगी
जहाँ औरत सिर्फ माँ, बेटी, बहन

सुधा ओम ढींगरा
जन्म : जालन्धर, पंजाब
शिक्षा : पीएच. डी, **संप्रति :** हिन्दी चेतना की संपादक।
प्रकाशनः कमरा नंबर 103, कौन सी जमीन अपनी, वसूली (कहानी-संग्रह), धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, (कविता-संग्रह), वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ (साक्षात्कार) के अलावा कई कृतियाँ विभिन्न भाषाओं में अनूदित और लगभग 3 दर्जन संग्रहों में रचनाएँ शामिल।

(e) sudhadrishti@gmail.com
(b) www.vibhom.com/index1.html

पत्नी या प्रेमिका ही नहीं
एक इंसान
सिर्फ इंसान हो
उसे इसी तरह जाना
पहचाना और परखा जाए।

कठपुतली

कठपुतली हैं उसके हाथों की
फिर नाज-नखरा कैसा?
नाचो जैसे नचाता है
वह आका है तुम्हारा

धागे हैं उसके हाथों में
कभी कत्थक
कभी कथकली
कभी ओड़िसी
कभी नाट्यम
करवाए हैं तुमसे

कराए हैं नौ रस भी अभिनीत
जीवन के नाट्य मंच पर
हँसें या रोएँ
विरोध करें या हों विनीत
नाचना तो होगा ही
धागे वो जो थामे है।

स्मृतियाँ

चाँद को देख
आँखें मूँदनी पड़ीं

बिन बुलाए बेमौसम
झरते फुहारों-सी
स्मृतियाँ
जब उनकी चली आईं

अश्रु की धार बहाती
हृदय व्यथित करती
इच्छाओं को
तरंगित करती
स्मृतियाँ उनकी चली आईं

छुआ तो उन्होंने दिल को है
पर होंठ बोल उठे
लोगों की उँगलियाँ उठीं
चाँदनी भी
चाँद के पहलू में छिप गई
स्मृतियाँ जब उनकी चली आईं

इस आशा पर कट रही हैं
स्याह रातें
बहारें लुटाती आएँगी
भोर की किरणें
मिटा देंगी उनकी स्मृतियाँ
मुँह उठाए जो चली आईं।

तेरा मेरा साथ

छाँव छम्म से
कूद कर वृक्षों से
स्वागत करती है
धूप के यात्री का

जिसके चेहरे की रंगत
हो गई है ताँबे रंग-सी
शरीर बुझे अलाव-सा

और कहती है
ऐ पथिक!
दो पल मेरे पास आ
सहला दूँ
ठंडी साँसों से
तरोताजा कर दूँ तुम्हें
ताकि चहकते-महकते
बढ़ सको अपनी
मंजिल की ओर

फिर पूछा
जीवन के किसी मोड़ पर
तुम्हारा मेरा सामना हुआ
तो, तुम पहचान लोगे मुझे?

पगली सामना कैसे?
पहचानना कैसे?
तेरा मेरा जन्म-जन्मांतर
हर क्षण का है साथ
प्राकृत, आत्मिक
वह मुस्कराया

इतना सुन छाँव
पेड़ की टहनियों में छुप गई
और निहारने लगी
धूप के मुसाफिर
अपने पथ प्रदर्शक के
पाँव के निशाँ।

नींद चली आती है

बाँट में
अपने हिस्से का सब छोड़
कोने में पड़ी
सूत से बुनी वह
मंजी अपने साथ ले आई
जो पुरानी, फालतू समझ
फेंकने के इरादे से
वहाँ रखी थी

बेरंग चारपाई को उठाते
बेवकूफलगी थी मैं
आँगन में पड़ी
बचपन और जवानी का
पालना थी वह

नेत्रहीन मौसी ने
कितने प्यार से
सूत काता, अटेरा और
चौखटे को बुना था
टोह-टोह कर रंगदार सूत
नमूनों में डाला था

चौखटे को कस कर जब
चारपाई बनी
तो हम बच्चे सब से
पहले उस पर कूदे थे

उसी चारपाई पर मौसी संग
सट कर सोते थे
सोने से पहले कहानियाँ सुनते
और तारों भरे आकाश में

मौसी के इशारे पर
सप्त ऋषि और आकाशगंगा ढूँढ़ते थे

और फिर अंदर धँसी
मौसी की बंद आँखों में देखते
मौसी को दिखता है
तभी तो तारों की पहचान है

हमारी मासूमियत पर वे हँस देतीं
और करवट बदल कर सो जातीं
चंदन की खुश्बू वाले उसके बदन
पर टाँगें रखते ही
हम नींद की आगोश में लुढ़क जाते

चारपाई के फीके पड़े रंग
समय के धोबी पट्कों से
मौसी के चेहरे पर आईं
झुरियों-से लगते हैं

जीवन की आपाधापी से
भाग जब भी उस
चारपाई पर लेटती हूँ
तो मौसी का
बदन बन वह
मनुहार और दुलार देती है

हाँ! चंदन के साथ अब
बारिश, धूप में पड़े रहने
और त्यागने के दर्द की गंध
भी आती है
पर उस बदन पर टाँगें
फैलाते ही नींद चली आती है।

वर्षों की यात्रा

आँगन में धीरे-धीरे
सरकती, फैलती, सिकुड़ती
सर्दियों की धूप
उस पर लहराते
पाइन वृक्ष के साए
दादी की चटाई की याद दिला गए

सर्दियों में
खुली छत पर
कई कोनों में
अनचाहे अतिथि-सा
फैलती धूप
जहाँ-जहाँ जाती
अतिथि देवो भवः सा
उसका स्वागत करतीं दादी
अपनी चटाई यहाँ-वहाँ ले जातीं
हम बच्चे भी साथ-साथ सरकते रहते
इस आस में
कब दादी की चटाई
धूप और साए की संधि में आए
और दादी लेटें

उनके लेटते ही हम सब
पेट पर से उनके
कमीज का अगला हिस्सा उठा
गुलगुले, पिलपिले
अनुभवों की सिलवटों से लिपटे
रुई से नर्म पड़े उनके पेट पर
मुँह लगा कर
तरह-तरह की आवाजें निकालने लगते

गुदगुदी से दादी
लोट-पोट होतीं
और हम पेट पर टिकाए मुँह से
निकली आवाजों के करतब से खिलखिला जाते

आवाजें निकालते-निकालते
हम थक जाते
तो दादी की टाँगें
पेट की तरफ इकट्ठी कर
उनपर बैठ जाते
और झूला झूलने लगते
झूटे-माटे झूटे-माटे
बोलते-बोलते ऊँघने लगते
तो दादी टाँगों से उतार
साथ लिटा लेतीं

एक-एक कर बच्चे
दादी की टाँगों पर झूलते
और उनकी बगल में लेट
सर्दियों की धूप में सोते

कोने में सिमट आए
धूप के टुकड़े में
दादी की टाँगों के झूले-सा आनंद
लेती और ऊँघती
मैं वर्षों की यात्रा कर आई
हवा में डोलते वृक्षों की
टहनियाँ और पत्तों के सरकते साए
संघर्ष और अनुभवों की झुरियों से
लिपटे दादी के चेहरे-सा चूमते
और आशीर्वाद देते लगे।